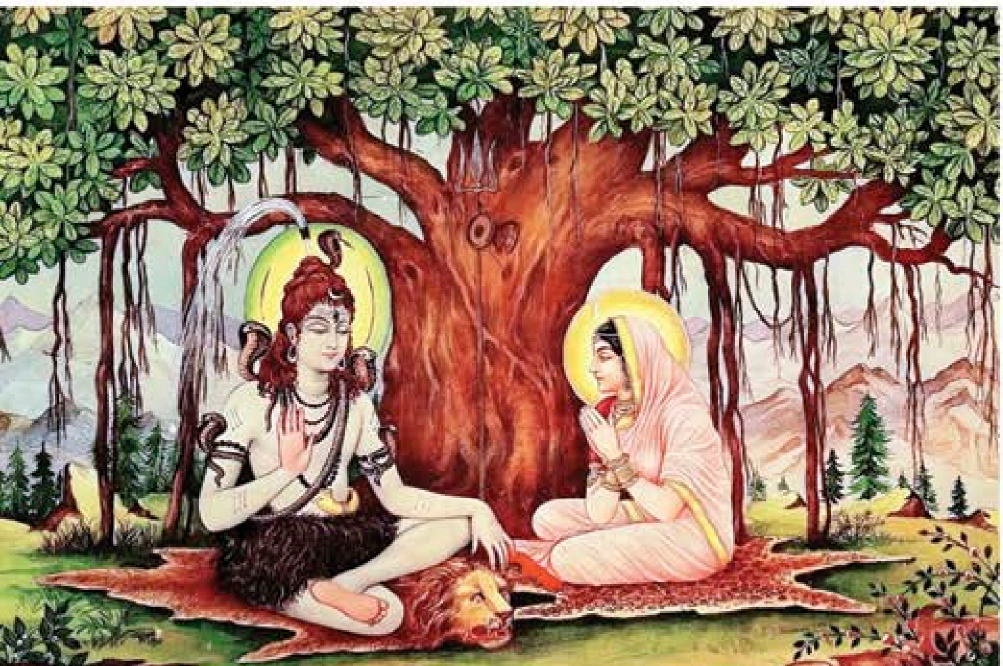
अमरनाथ–माहात्म्य–कथासार

• अंकुर नागपाल

‘भृंगीशसंहिता’ में लगभग 525 श्लोकों वाले 11 पटलों के माध्यम से हमें अमरनाथजी के सम्पूर्ण यात्राक्रम एवं माहात्म्य का वर्णन मिलता है, जिसका सार प्रस्तुत आलेख में दिया जा रहा है।



अमरेशं महाकालं ज्योतिषं भस्मगात्रकम्।
यानि चान्यानि पुण्यानि स्थानानि मम भूतले॥

— लिंगपुराण, 1.92.137

इस वचन में महादेव जी ने इस भूमण्डल के 68 मुख्य शैव तीर्थों का वर्णन करते हुए ‘अमरेश’ (अमरनाथ/अमरेश्वर) का नामोल्लेख किया है। महान् इतिहास ‘शिवरहस्य’ में भी ‘अमरनाथ’ के एकाधिक उल्लेख हैं[1] जबकि ‘भृंगीशसंहिता’ में लगभग 525 श्लोकों वाले 11 पटलों के माध्यम से हमें अमरनाथजी के सम्पूर्ण यात्राक्रम एवं माहात्म्य का वर्णन मिलता है। भगवत्कृपा से प्रस्तुत लेख में उक्त ‘स्थलपुराण’ का सारांश प्रस्तुत है; ताकि अमरेश्वर तीर्थ का प्रामाणिक इतिहास जन–जन तक पहुँचे।

‘अमरनाथ–माहात्म्य’ के ‘प्रथम पटल’ में अमरनाथजी का शास्त्रीय यात्राक्रम वर्णित है। महर्षि भृंगीश प्रमथ के वचनानुसार; शिवस्वरूप भगवान् भैरव के श्रीमुख से अनन्तनाग आदि पुण्यस्थलों की महिमा को सुनकर माता भैरवी ने अमरनाथ यात्रा के माहात्म्य को सुनने की इच्छा व्यक्त की। तब माहात्म्य–कथा (जिसको परवर्ती विद्वानों ने ‘अमरकथा[2]’ भी कहा है) का आरम्भ करते हुए भैरवजी अविधिपूर्वक को दोषास्पद बताते हैं[3]। फिर पुण्यजनक यात्राक्रम का वर्णन करते हुए वे कहते हैं : ‘ऊर्ध्व’ एवं ‘अधः’। इन दो भेदों से अमरनाथ यात्रा दो प्रकार की होती है—‘ऊर्ध्वयात्रा’ (अर्थात् सूक्ष्म/मानसिक यात्रा) केवल उत्तम मोक्षाभिलाषी योगियों के द्वारा प्राणायामपूर्वक सम्भव है जबकि पापनाश एवं चित्तशुद्धि के इच्छुक साधकों को

1. अविमुक्ते रुद्रकोटौ केदारे चामरेश्वरे… शिवायतनमुख्यानि दिवि भूमौ गिरिष्वपि। अमरेशं च वरदं देवैः पूर्वं प्रतिष्ठितम्। (शिवरहस्य, 8.14.24, 11.49.28, 31)
2. यथा रणवीरेश्वर–महन्त श्रीसरस्वतीगिरिजी द्वारा विद्याप्रकाश प्रेस (लाहौर) से 1926 ई. में प्रकाशित।
3. यात्रामकृत्वा देवेशि लिङ्गं पश्यति यो नरः। स याति नरकं घोरं तीर्थद्रोही भवेत्तथा॥ (अमरनाथ माहात्म्य, 1.10)



‘अधोयात्रा’ (अर्थात् स्थूल/बाह्य यात्रा) करनी चाहिए। अधोयात्रा करने वाला साधक धीरे–धीरे ऊर्ध्वयात्रा का अधिकारी हो जाता है।

स्थूलयात्रा करने वाला शिवभक्त सर्वप्रथम श्रीपुर (वर्तमान श्रीनगर) में गणेशपूजा एवं यात्रा का संकल्प करे। फिर वहाँ से ‘षोडशतीर्थ’ (वर्तमान शोराहवार)[1], ‘शिवपार’ (वर्तमान शिवपोरा) और ‘पद्मदृष्टि’ (वर्तमान पान्द्रेठान) में दिव्य गंगातुल्य जलधाराओं में आचमन करते हुए क्रमशः ‘पद्मापुर’ (वर्तमान पाम्पोर) तथा ‘सिद्धक्षेत्र’ (वर्तमान स्यदवार) में आचमन, स्नान, दान, तर्पण, पूजन आदि करे। फिर ‘वारीशी’ (वर्तमान बारसू) की रुद्रगंगा में स्नान आदि करके ‘युवतीक्षेत्र’ (वर्तमान व्रारी) एवं ‘मिष्टोद’ (वर्तमान मिठवन) को पार करके ‘अवन्तिका’ (वर्तमान अवन्तीपोरा) पहुँचे। उस सिद्धक्षेत्र में स्नान करके ‘महानाग’ (वर्तमान मेहरनाग) की शरण में जाए। उसके निकटवर्ती ‘हरिद्रा–गणपति’ (वर्तमान हरिपारी गाँव) में भगवान् गणेशजी के दर्शन–पूजन करके तथा ऋषितर्पण करके ‘बलिहार’ (वर्तमान बलियार) नामक महान् क्षेत्र में आवे। वहाँ स्नानादि करके वह ‘ज्येष्ठाषाढ़’ (वर्तमान संगम/गीरू) में स्नान हेतु पहुँचे।

तत्पश्चात् ‘नागाश्रम’ (वर्तमान वाघहामा) पहुँचकर वहाँ भगवान् हस्तिकर्ण का पूजन–अर्चन करे। फिर वहीं से ‘चक्रेशतीर्थ’ (वर्तमान चक्रधर), ‘देवकतीर्थ’ (वर्तमान दिवकीकार) एवं ‘हरिश्चन्द्रतीर्थ’ (वर्तमान बिजबिहारा) नामक तीर्थों में क्रमशः स्नान, तर्पण, शिवपूजन आदि करता हुआ वह ‘स्थूलवाट’ (वर्तमान दाजीवारा) पहुँचे। वहाँ ‘लम्बोदरी धारा’ (वर्तमान लिद्दर नदी) में पुनः स्नान–आचमन करके वह ‘सूर्यगुफा’ (वर्तमान सिरहामा) को जाए; जहाँ ‘सूर्यगंगा’ में स्नान करके पुण्य अर्जित करे। उस तीर्थ में विधिवत् दान करने से ब्रह्महत्या तक दूर हो जाती है। वहाँ से ‘बद्धोरसि’ (वर्तमान भदूरा) में बहने वाली जलधारा में गंगाजी की भावना करके स्नान करे और आगे ‘सखर’ (वर्तमान सखरस) पहुँचे; जहाँ विराजित गणपतिजी के निकट स्नान करके उनका अर्चन करना चाहिए।

फिर पुण्यशाली तीर्थयात्री आगे ‘खिल्यायन क्षेत्र’ (वर्तमान खिलन गाँव) में विराजमान भगवान् विष्णु के दर्शन करके उनका विविध उपचारों से पूजन करे। तदुपरान्त ‘मामल’ (वर्तमान गणेशबल) में गणेशजी की पूजा करे। वहाँ स्थित ‘मामेशगंगा’ (वर्तमान लिद्दर नदी) में स्नान करके ‘मामलेश्वर’ नामक शिवलिंग के दर्शन का विधान है। वहीं से वह ‘भृगुक्षेत्र/परिशीलन वन’ (वर्तमान पहलगाम) की ओर जाए। वहाँ बहने वाली ‘नीलगंगा’ में स्नान करके वह आगे ‘स्थाण्वाश्रम’ (चन्दनबाड़ी) पहुँचे। करोड़ों जन्मों के पापों को नष्ट करने वाली पुण्यसलिला नदी में स्नान करके वह निकटवर्ती देवदुर्लभ ‘पेषपर्वत’ (वर्तमान पिस्सूघाटी) पर आरोहण करे। वहीं से आगे वह क्रमशः ‘स्वाश्रम’ (वर्तमान शेषनाग सरोवर) में यथाविधि स्नान करके ‘वायुवर्जनक तीर्थ’ (वर्तमान वावजन) को पार करे। आगे वह ‘पंचतरंगिणी’ (वर्तमान पंचतरणी) के जल में अवगाहन करके ‘रत्नशिखर’ (वर्तमान संगम चोटी) के ऊपर ‘डामरेश्वर’ का यथोपचार पूजन करे। तदनन्तर वह विभिन्न पर्वतों से घिरी हुई अमरावती नदी में स्नान करे और भस्मधारणपूर्वक नृत्य करता हुआ महापातकनाशिनी पवित्र ‘अमरनाथ गुफा[2]’ में प्रवेश करे।

प्रणम्य विधिवद्भक्त्या सुधालिङ्गं सनातनम्।
नरो न लिप्यते पापैः कोटिजन्मसमुद्भवैः॥
दर्शनात्स्पर्शनाच्चापि पूजनाच्चापि वन्दनात्।
अमरेशस्य लिङ्गस्य मुच्यते सर्वकिल्बिषैः॥

— अमरनाथ–माहात्म्य, 1.60–61

पवित्र गुफा में भक्तिपूर्वक विधिवत् सनातन पवित्र हिमलिंग का दर्शन, स्पर्श, पूजन, वन्दन आदि करके अपने करोड़ों जन्मों के पापों का नाश करे। इस प्रकार 36 तत्त्वों के प्रतीकभूत उक्त 36 तीर्थों (जलराशियों) में स्नान–आचमन आदि करके यात्री अपनी अमरनाथ–यात्रा को सम्पन्न करता है।[3] द्वितीय पटल में माता भैरवी के प्रश्न करने पर भैरवजी ने खिल्यायन स्थित सर्वपापनाशक ‘नारायणतीर्थ’ की महिमा कही है।

एक समय बालखिल्य नामक 60,000 ऊर्ध्वरेता ऋषियों ने उक्त स्थान पर कई हजार वर्षों तक तप करके भगवान् विष्णु से अपने निवास हेतु एक पुण्यजनक आश्रम तथा उनका पादतीर्थ (चरणामृत) माँगा। अपने भक्तों के प्रेम से रोमांचित हुए भगवान् श्रीहरि ने वहाँ अपने पादतीर्थ को प्रवाहित किया; जो ‘नारायण तीर्थ’ कहलाया। प्रलयपर्यन्त वह स्थान उन ऋषियों के निमित्त नियुक्त हुआ; जो कालान्तर में ‘खिल्यायन’ (अर्थात् बालखिल्यों का अयन/आश्रम; वर्तमान खिलन गाँव) कहलाया। वहाँ स्नान, दान, जप, अर्चन आदि करने से यात्री अपने सभी पापों से तत्क्षण मुक्त होकर मुक्ति को पाता है।[4]

1. उक्त क्षेत्रों के वर्तमान नाम नीलकण्ठगुर्टू शास्त्रीजी की ‘श्रीअमरेश्वरदर्शनम्’ (1959 ई.) नामक पुस्तक से साभार उद्धृत हैं।

2. उक्त गुफा कैलास के ही समान शिवजी का एक अपर निवास स्थान है; जिसमें भगवान् शिव ने माता पार्वती को अमृतत्वदायिनी श्रीमद्भागवत-कथा सुनाई थी। उसी कथा को तोते के रूप में सुनकर शुकदेवजी अमर हुए : “पार्वत्यै कथयामास पुरा काश्मीरमण्डले। महेशोऽमरगाथां याममृतत्वप्रदायिनीम्” (कौशिकीसंहितोक्त भागवत-माहात्म्य 5.4)

3. “षट्त्रिंशत्तत्त्वरूपाणां क्षेत्राणां परतः स्थितः” (अ.मा.,1.64)

4. “स्नात्वा जन्मभवैः पापैर्मुच्यते वै न संशयः। खिल्यायने महापुण्ये विष्णोस्तीर्थे ह्यनुत्तमे। नरो मुक्तिमवाप्नोति स्नानदानजपार्चनैः” (वही 2.29, 31)



'तृतीय पटल' में खेलनक क्षेत्र के माहात्म्य को सुन चुकी भैरवी देवी की जिज्ञासा पर भैरवजी उन्हें महापापनाशक 'मामलक क्षेत्र' की महिमा सुनाते हैं। एक बार खिल्यायन क्षेत्र से आगे दण्डकमुनि के आश्रम में महादेवजी एकान्तवास कर रहे थे। कोई एकान्त भंग न करे, इसलिए गणेशजी प्रभु के द्वारपाल बन गए, किन्तु धीरे–धीरे स्थानीय देवता एवं महर्षि लोग दर्शन हेतु आने लगे। उदासीन महादेवजी ने उन सबको दूर से आता देख 'मा–मा' (अर्थात् नहीं! नहीं!!) का उद्घोष किया, जिसे सुनकर गणेशजी भी सावधान होकर 'मा–मा' की उत्कट ध्वनि लगे। उस ध्वनि के प्रभाव से सभी देवता आदि अदृश्य हो गए। 'मा' शब्द को सुनकर उन सभी के प्रयास 'अलम्' (अर्थात् उपसंहार) को प्राप्त हुए, अतः वह स्थान 'मामलम्' (वर्तमान गणेश बल) कहलाया। शिवजी ने उसी स्थान पर गणेशजी को प्रतिष्ठित कर दिया तथा उस स्थान पर उनके पूजन को विघ्ननिवारक एवं सर्वसिद्धिप्रद बताया है।[1] वहाँ गणेशोपासना करने से सभी मनःकामनाएँ पूर्ण होती हैं। वैशाख शुक्ल चतुर्दशी को मामलक गणेश की सन्निधि में रात्रिभर उपवास करने से सर्वकामनापूर्ति और मोक्षप्राप्ति होती है। उसी स्थान पर स्वयं शिवजी भी 'मामेश्वर लिंग' के रूप में स्थित हो गए।

चतुर्थ पटल में भैरवजी कहते हैं : द्वारपाल गणेशजी ने त्रिपुरासुर द्वारा सताए गए इन्द्र आदि देवताओं को भी शिवजी तक नहीं पहुँचने दिया। इससे कुपित होकर इन्द्र ने गणेशजी पर वज्रप्रहार करना चाहा, किन्तु प्रभु ने उसके हाथ को स्तम्भित कर दिया। शोकाकुल इन्द्र ने आठ श्लोकों वाले 'क्रोधसंहारस्तोत्र' से अष्टविनायक गणेशजी की स्तुति करके उनकी शरणागति स्वीकार की; जिससे प्रसन्न गणेशजी ने इन्द्र को अभयदान देकर वहाँ से लौटा दिया। फिर गणेशजी ने स्थानीय उपवनों से अनेक दिव्य फल खाए और शिवजी की जटाओं से बहने वाले गंगाजल का प्रचुर पान किया, किन्तु वे इतना अधिक गंगाजल पी गए कि उनका उदर बहुत बढ़ गया। तब शिवजी ने विनोदपूर्वक उन्हें 'लम्बोदर' कहकर अपने डमरू से उनके पेट का स्पर्श किया। इससे गणेशजी के उदर में विद्यमान गंगधारा उनके मुख से निकल आई। करोड़ों जन्मों के पापों का नाश करने वाली वह धारा अब 'लम्बोदरी' (वर्तमान लिद्दर नदी) कहलाती है; जिसमें स्नान करने वाला यात्री देहत्याग के बाद निर्विघ्न सनातन शिवलोक को प्राप्त होता है। उस धारा के तट पर श्रेष्ठ ब्राह्मणों को गौ, सुवर्ण, वस्त्रादि दान करना अनन्त फलदायी माना जाता है।[2]

1. "यः कश्चिन्मानवो लोके ह्यत्र त्वां पूजयिष्यति। सर्वान् विघ्नान् विनिर्जित्य सिद्धिं समधिगच्छति" (वही 3.14)
2. "गोभूहिरण्यवासांसि लम्बोदरनदीतटे। यो ददाति सुविप्राय सोऽनन्तफलमश्नुते॥ लम्बोदरनदीतीरे यः स्नाति परया मुदा। स याति विघ्नरहितः शिवलोकं सनातनम्" (वही 4.21)

पंचम पटल में भैरवजी ने 'भृगुतीर्थ' (जिसको 'परिशीलन वन' भी कहते हैं; वर्तमान पहलगाम) की कथा कही। एक समय महर्षि भृगु को एक सहस्र दिव्य वर्षों तक देवदुर्लभ दुःसह्य तपस्या की; जिसके उपलक्ष्य में उन्हें भगवान् श्रीमन्नारायण के दर्शन हुए। श्रीभगवान् ने प्रेमावेश में अपने तपस्वी भक्त भृगु को यहीं आलिंगन दिया था। श्रीभगवान् के श्रीविग्रह से निकले स्वेदबिन्दु ही वहाँ विद्यमान जलधारा के रूप में परिणत हो गए; जो 'भृगुतीर्थ' कहलाती है। उसमें स्नान, आचमन, श्राद्ध, देवार्चन आदि करने से ब्रह्महत्या जैसे पापों से भी मुक्ति मिलती है।[3] पूर्वकाल में वहाँ क्रीड़ा करते समय भगवान् शिवजी के मुख पर भगवतीजी के नेत्रों का काजल लग गया। तब महादेवजी ने अपनी जटाओं से उस काजल को पोंछकर, पुनः अपने मुख एवं जटाओं को जटाशंकरी गंगाजी के जल से धोया। इससे वह गंगधारा श्यामवर्णा होकर प्रवाहित होने लगी और 'नीलगंगा' कहलाई। उसका दर्शन पापनाशक है। उसकी रज का सेवन ब्रह्मलोक प्रदान करता है तथा उसमें स्नान करने से अन्तःकरण शुद्ध होता है।[4]

षष्ठ पटल में भैरवजी स्थाण्वाश्रम की महिमा कहते हैं। एक बार भगवान् महादेव, स्थाणु (ठूँठ) के समान अविचल और तन्मय भाव से, दीर्घकाल तक तपस्या करते रहे। उस समय देवी पार्वती ने स्वयं को प्रभु शिवजी की सेवा–पूजा में नियुक्त रखा। स्थाणु जैसे होकर उस आश्रम में शिवजी साधनारत रहे, अतः वह महापापनाशक स्थान 'स्थाण्वाश्रम' (वर्तमान चन्दनबाड़ी) कहलाया। वह स्थान देवताओं के द्वारा वन्दित है। वहाँ किए गए श्राद्ध, तर्पण आदि सौ कल्पों तक पितरों को सन्तुष्ट करते हैं। वहाँ किए स्नान अनन्त गोदानों तथा प्रयाग, कुरुक्षेत्र आदि में किए स्नानों जितना पुण्य प्रदान करता है। वहाँ किया गया मुट्ठीभर तिल का दान वाजपेय, अश्वमेध आदि के समान फलप्रद है जबकि वहाँ स्नान, दान आदि नहीं करने वाला दीर्घकाल तक नरक में रहकर पुनः पाप योनि में जन्म लेता है। वहाँ किए गए सन्ध्यावन्दन आदि देवकार्य कोटि गुणित एवं पितृकार्य अनन्त गुणित होकर फलीभूत होते हैं।[5]

तदुपरान्त भैरवजी बताते हैं कि स्थाण्वाश्रम में तप कर रहे महादेवजी के दर्शन हेतु देवताओं और दैत्यों में होड़ होने लगी। भीषण युद्ध हुआ

3. "भृगुतीर्थे महाविष्णोः स्वेदोद्भूते महेश्वरि। स्नात्वा पीत्वा प्रमुच्येत ब्रह्महत्यादिकोटिभिः॥ श्राद्धं कृत्वा तीर्थवरे भृगोः परमपावने। पितरस्तृप्तिमायान्ति शतकल्पं न संशयः" (वही 5.14-15)
4. "नीलगङ्गाजलं पुण्यं महापातकनाशनम्। स्नात्वा पीत्वा च विधिवत्सर्वपापैः प्रमुच्यते" (वही 5.35)
5. "स्थाण्वाश्रमे तु यः श्राद्धं करोति विधिवन्नरः। तत्पूर्वे तृप्तिमायान्ति शतकल्पं न संशयः॥ स्थाण्वाश्रमसमीपे तु स्नानं कृत्वा विधानतः। अश्वमेधशतानां स फलमाप्नोति मानवः॥ सन्ध्या कोटिगुणा प्रोक्ता तर्पणं स्यादनन्तकम्" (वही 6.11,14,18)

और देवताओं ने दैत्यों को एक पहाड़ में पीसकर मार दिया। जिस स्थान पर वे दैत्य पिसे, वही 'पेषगिरि' (वर्तमान पिस्सू चोटी) कहलाया। कुरुक्षेत्र, गंगासागर, प्रयागराज आदि तीर्थों में स्नान करने से जो पुण्य होता है, वह उस पुण्यमय पर्वत के दर्शनमात्र से मिल जाता है।[6]

सप्तम पटल में शेषनाग पर्वत तथा वहाँ स्थित विशाल सरोवर की महिमा को बताते हुए भगवान् भैरवजी कहते हैं—एक बार सतयुग में सभी देवता, सिद्ध मुनि, गन्धर्व आदि ने मिलकर अमरनाथ तीर्थ में तपस्या करने का मन बनाया। उन दिनों कोई एक पराक्रमी दैत्य भगवान् शिव से वरदान पाकर वायुरूप में विचरण करके वहाँ के निवासियों को सताने लगा। तब इन्द्र आदि देवताओं ने महादेवजी से उस दैत्य का वध करने हेतु प्रार्थना की। शिवजी स्वयं उस दैत्य के वरदाता थे, अतः उसके वध का प्रत्यक्ष कारण बनने में असमर्थता व्यक्त करते हुए उन्होंने देवताओं को विष्णु भगवान् के पास भेज दिया। तब सभी देवताओं ने क्षीरसागरवासी परमात्मा की स्तुति की और उन्हें उस वायुरूपी दैत्य के वध हेतु अनुरोध किया। चतुर्बाहु श्रीभगवान् इसी स्थान पर भगवती लक्ष्मी एवं शेषजी के साथ प्रकट हो गए और शेषजी से बोले : "हे शेष! सर्प वायु का आहार करते हैं, अतः तुम इस स्थान में विद्यमान समस्त वायु को पी जाओ। इतने भर से वह वायुरूप दैत्य भी तुम्हारे उदर में जाकर स्वतः नष्ट हो जाएगा।" तब श्रीभगवान् की आज्ञा से शेषजी ने समस्त वायु का भक्षण करते हुए उस वायुरूप दैत्य का भी प्राणान्त कर दिया। फिर श्रीभगवान् की आज्ञा से शेषजी वहाँ एक पर्वत के रूप में स्थित हो गए। उसके नीचे स्थित सरोवर (वर्तमान शेषनाग झील) में स्नान करने से यात्री के सभी पाप दग्ध हो जाते हैं और वह सुखपूर्वक शिवतत्त्व को प्राप्त करता है। उसके दर्शन, स्पर्श, स्नान एवं वहाँ किए गए होम, दान, स्वाध्याय, स्तुति, जप आदि अनन्त फलदायी होते हैं। समस्त देवगण भी वहाँ सुखपूर्वक आश्रम बनाकर तपस्या करने लगे, अतः वह स्थान 'स्वाश्रम' भी कहलाया।[7]

अष्टम पटल में वर्णन है कि पेषगिरि में देवताओं द्वारा दैत्यों के पीसे जाने पर एक बार 'पृषत्' नामक कोई पातालवासी दैत्य अदृश्य रूप से स्थानीय देवताओं एवं महर्षियों को त्रास देने हेतु प्रकट हुआ। शिवजी की प्रेरणा से वे देवता एवं महर्षि लोग छोटी–छोटी शिलामयी मठियों में निवास करने लगे। उन सब पर अपना कोई प्रभाव नहीं देखकर वह राक्षस कुपित हो गया और उग्रतम वायु (आँधी–तूफान) के रूप में वहाँ प्रकट होकर उत्पात मचाने लगा। तब शिवजी की आज्ञा से यज्ञाराध्य इन्द्र ने अपने

6. "कुरुक्षेत्रे प्रयागे च गङ्गासागरसङ्गमे। स्नानाद्यत्फलमाप्नोति तदेतस्य तु दर्शनात्" (वही 7.27)
7. दर्शनात्स्पर्शनात्स्नानाद्दानाद्धोमाज्जपात्तथा। स्वाध्यायस्तुतिपाठाच्च ह्यनन्तं पुण्यमाप्नुयात्" (वही 7.33)

वज्र द्वारा उस वायुरूप दैत्य उसका वर्जन (वध) कर दिया; अतः वह तीर्थ 'वायुवर्जन' (वर्तमान वावजन) कहलाने लगा। वहाँ स्नान, तिल–अन्न का दान, पूजन, आचमन आदि अनन्तफलदायी माने जाते हैं। वहाँ किया गया श्राद्ध सौ कल्पों तक पितरों को तृप्त करता है।[1]

वहाँ से कुछ आगे एक उत्तम सरोवर था; जिसमें इन्द्र से भयभीत हुए कुछ राक्षस छिप गए थे। कालान्तर में वे लोग देवकार्यों में बाधा पहुँचाने लगे। एक दिन जब भगवान् गौरीशंकर वहाँ पहुँचे, तब उन्होंने उन राक्षसों से पीड़ित मुनियों को देखा। तब शिवजी ने कुपित होकर एक हुंकार भरी; जिससे डरकर वे राक्षस पुनः उस सरोवर में जा छिपे। तब पार्वती जी ने शाप देकर राक्षसों का आश्रय बनने वाले उस दिव्य सरोवर को सुखा दिया। इससे वे सब दैत्य बाहर निकल आए और इन्द्र आदि देवताओं ने उन्हें युद्ध में पराभूत कर दिया। उस क्षेत्र में यात्री को मौन रहना चाहिए। वहाँ यात्रियों को महाकाली (भवानी) का पूजन करना चाहिए। फिर आगे नगाड़े के आकार वाली एक शिला पर मिष्टान्न समर्पित करना चाहिए; ताकि यात्री के करोड़ों पापों का नाश हो और उसको अक्षय सुख की प्राप्ति होवे।

वहाँ से आगे 'पंचतरंगिणी' (वर्तमान पंचतरणी) नामक पुण्य तीर्थ है; जिसमें स्नान करने से अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है। एक समय भगवान् नटराजराजेश्वर प्रमुदित होकर वहाँ ताण्डव करने लगे। तब उनकी जटाएँ पाँच भागों में बँट गयीं और उसमें विद्यमान गंगा पाँच धाराओं में विभक्त होकर बहने लगी। तब से वह स्थान 'पंचतरंगिणी' कहलाया। वहाँ स्नान करने से गोहत्या, कृतघ्नता, भ्रूणहत्या, गुरुपत्नी गमन आदि पापों से मुक्ति मिलती है। कुरुक्षेत्र, प्रयाग, गंगासागर, नैमिषारण्य आदि तीर्थों में किए असंख्य स्नानों का फल उस 'पंचतरंगिणी' के स्नान से प्राप्त हो जाता है। वहाँ किया सविधि श्राद्ध सौ कल्पों तक फलदायी है, जबकि वहाँ ब्राह्मणों को दिया गया दान अक्षय हो जाता है।[2]

नवम पटल में भैरवजी कहते हैं कि भगवान् नटराज की दोनों सन्ध्याएँ प्रायः कार्तिकेय जी के साथ खेलने में ही बीत जातीं थीं। 'मेरा सन्ध्यावन्दन छूट न जाए।' इस विचार से महादेवजी ने अपने एक डामर (शिवगण) को सन्ध्याकाल की सूचना देने हेतु नियुक्त कर दिया। वह शिवगण पवित्र गुफा से पूर्व स्थित रत्नशिखर (वर्तमान संगम चोटी) पर खड़ा होकर प्रतिदिन डमरू बजाकर सन्ध्याकाल की सूचना देने लगा, किन्तु एक दिन प्रमादवश वह सन्ध्या के समय सो गया और शिवजी का नित्यकर्म छूट गया। इससे कुपित होकर शिवजी ने उसको चिरकाल तक शिला हो जाने का शाप दे दिया (जिसको इन दिनों लोग भ्रमवश 'काली माता' मानते हैं।) कालान्तर में जब शिवजी शान्त हुए, तब उन्होंने उस शिवगण को वरदान दिया कि तुम्हारी पूजा, परिक्रमा आदि करने वाला यात्री अन्ततः शिवलोक को प्राप्त होगा।[3]

भैरवजी पुनः कहते हैं—एक समय पवित्र गुफा में विराजमान महादेवजी के दर्शनार्थ एकत्र हुए देवताओं को द्वारपाल नन्दी ने गुफाद्वार पर ही रोक दिया, किन्तु उन देवताओं के कोलाहल को अकेले नन्दीश्वर बहुत समय तक झेल न सके। उन्होंने असन्तोषपूर्वक अपने दण्ड को नीचे ही पटक दिया और शिवजी को सूचना देने हेतु ऊपर पहुँचे। एकान्तवासी शिवजी किसी से मिलना नहीं चाहते थे, अत: उन्होंने नन्दी को माया से गुफा के बाहर एक दीर्घाकार गर्भागार बनाने की प्रेरणा दी। देवता गर्भागार में प्रवेश नहीं करना चाहते थे, अतः वहाँ से दूर हट गए। नन्दी द्वारा निर्मित उस गर्भागार (वर्तमान गर्भजून) से होकर मुख्य गुफा तक पहुँचने वाले यात्री को पुनः कभी गर्भवास नहीं करना पड़ता। मातृपितृहन्ता, सुरापान करने वाला, भ्रातृद्रोही, गुरु–पत्नीगामी आदि भी उसमें प्रवेश करते ही अपने सभी पापों से मुक्त हो जाता है।[4]

दशम पटल में अमरावती नदी की उत्पत्ति एवं महिमा के सन्दर्भ में भगवती भैरवी द्वारा पूछे जाने पर भैरवजी वर्णन करते हैं : परमात्मा शिव की माया ही अनन्त ब्रह्माण्डों एवं समस्त चराचर जीव आदि के रूप में भोग–भोग्य–भोगायतन की उत्पत्ति, स्थिति और संहार करती है। एक बार कल्पाम्भ में जब सभी प्राणियों के साथ–साथ मृत्यु भी उत्पन्न हुई। तब उससे भयभीत होकर देवता लोग अमरनाथ गुफा में तपस्या कर रहे महादेवजी की शरण में गए। देवताओं ने विविध स्तुतियों द्वारा शिवजी को सन्तुष्ट करके उनसे उस मृत्यु के निवारण का उपाय पूछा। तब परम कृपालु प्रसन्नमना शिवजी ने अपने मस्तक पर स्थित चन्द्रकला को निचोड़ा; जिससे 'अमरावती' नामक नदी निकल पड़ी। उस अमृतधारा ने देवताओं को मृत्युभय से मुक्त कर दिया।[5] चूँकि उसके दर्शन एवं स्नान से अमरत्व मिलता है, इसलिए वह नदी 'अमरावती' कहलाती है।[6] उस अमरावती की कुछ बूँदे स्वयं शिवजी के शरीर पर भी पड़ीं; जिससे आनन्दित होकर स्वयं शिव भी द्रवीभूत होने लगे। शिवजी को द्रवित हुआ जानकर देवताओं ने पुनः स्तुति करके शिवजी को सचेत किया तथा शिवजी द्रवावस्था से घनीभूत होकर एक हिमलिंग के रूप में प्रकट हो गए। उस प्रेममय हिमलिंग के दर्शन, पूजन आदि द्वारा देवता सदा के लिए अमर हो गए। इसलिए उन लिंगमूर्ति शिवजी का नाम 'अमरनाथ' हो गया।[7]

श्रावण पूर्णिमा (रक्षाबन्धन) के दिन देवताओं एवं अन्य प्राणियों को मृत्युभय निवारणपूर्वक अमरत्व प्रदान करने वाला 'अमरेश्वर' नामक हिममय शिवलिंग प्रकट हुआ। उसी तिथि पर देवताओं ने हिमलिंग की विधिपूर्वक पूजा–प्रतिष्ठा की और प्राणियों के कल्याण हेतु भगवान् अमरनाथ की यात्रा का विधान बनाया।[8] तभी से शिवजी का एक नाम 'अमरेश' हो गया।[9]

वह हिमलिंग दर्शनमात्र से ही, प्राणिमात्र के सभी कष्टों का निवृत्त करके, उन्हें भोग–ऐश्वर्य–मोक्ष का अतुल प्रसाद प्रदान करने वाला है। गोमांस–भक्षण, सुरापान, स्वर्ण की चोरी, मातृगमन, पितृहत्या, देवयज्ञ विरोध, बालहत्या, भ्रूणहत्या, क्रोध, लोभ, काम, मोह, असत्यभाषण आदि सभी पाप उस हिमलिंग के दर्शन से दूर हो जाते हैं। अमरनाथ के दर्शनमात्र से कुरुक्षेत्र, प्रयाग, नैमिषारण्य आदि में किए करोड़ों गोदानों जितना फल मिलता है। उस हिमलिंग के दर्शन, पूजन आदि में स्त्री–पुरुष आदि सभी अधिकृत हैं। अमरेश्वर के दर्शनार्थी कैवल्यमोक्ष के अधिकारी हो जाते हैं। दर्शनमात्र से साक्षात् रुद्ररूप हो जाते हैं तथा उनके सभी महापातक नष्ट हो जाते हैं। भैरवजी का उद्घोष है कि अमरनाथजी का दर्शन, पूजन आदि काशी से दस गुणा, प्रयाग से सौ गुणा, नैमिषारण्य और कुरुक्षेत्र से 1000 गुणा अधिक पुण्यदायक है। तीनों लोकों के समस्त तीर्थ 'अमरनाथ' नामक हिमलिंग की सोलहवीं कला के समकक्ष भी नहीं है। भूमि एवं अन्तरिक्ष में अमरनाथ के समान कोई अन्य पापनाशक तीर्थ नहीं है।[10]

---

1. "स्नात्वा कृत्वा च दानं वै तिलान्नमपि सुन्दरि। अनन्तफलमाप्नोति पुण्ये वै वायुवर्जने॥ वायुवर्जनदेशे तु कृत्वा श्राद्धमतन्द्रितः। आपयेच्च पितृंस्तृप्तिं शतकल्पं न संशयः" (वही 8.18-19)
2. "कुरुक्षेत्रे प्रयागे च गङ्गायां नैमिषेऽथवा। स्नात्वा दत्त्वा च विधिवद्यत्फलं फलं लभते नरः॥ तत्फलं समवाप्नोति स्नात्वा पञ्चसरिज्जले। श्राद्धकर्तुश्च तृप्यन्ति शतकल्पं पितामहाः" (वही 8.47-48)
3. "तेनादौ तव पूजा वै कार्या प्रक्रमणं तथा। यः कश्चिन्मानवो लोके गणं डामरमर्चयेत्। स प्रयाति शिवस्थानमिति सत्यं वदामि ते" (वही 9.17,20)
4. "गर्भागारान्निःसरेद्यो दिदृक्षुरमरेश्वरम्। न पुनर्गर्भवासस्य दुःखभाग्मानुषो भवेत्" (वही 9.32)
5. इसका सन्दर्भ हमें 'शिवाथर्वशीर्ष' में भी प्राप्त होता है; जहाँ शिवजी के द्वारा देवताओं को अमृत प्रदान करके अमर बनाने का संकेत है : "अपाम सोभममृता अभूमागन्म ज्योतिरविदाम देवान्" (3)
6. "स्नात्वा वै ह्यमरावत्यां दृष्ट्वा ताम वा समन्ततः। अमरेश्वरतां याति ततः प्रोक्ताऽमरावती" (वही 10.74)
7. "स्वं पुनर्दर्शयामास देवानां हितकाम्यया। रसोऽप्याश्यानतां प्राप्य लिङ्गरूपोऽभवत्प्रिये॥ यस्माद्भवद्भिर्दृष्टं मे प्रेमलिङ्गं दरीगृहे। तस्मान्न मृत्युर्युष्मान् वै बाधते मदनुग्रहात्। इहैव ह्यमरा भूत्वा प्रयात शिवरूपताम्॥ इतः प्रभृति मे लिङ्गं ह्यमरेशाख्यमुत्तमम्। पुण्यं परतरं देवास्त्रैलोक्ये ख्यातिमेष्यति" (वही 10.31,34-35)
8. "यतः स्वं दर्शयामास श्रावण्यां च हरः स्वयम्। ततश्च कथिता यात्रा श्रावण्यां पुण्यदायिनी॥ श्रावणे शुक्लपक्षे तु यात्रां कृत्वा विधानतः। फलं ह्यमरनाथस्य नरो यात्यविनश्वरम्॥ यः श्रावण्यां महादेवि प्रपश्येद्गिरिमध्यगम्। लिङ्गं ह्यमरनाथाख्यं स गच्छेच्छिवसन्निधौ" (वही 11.12-13,15)। मिलान कीजिए : "अमरेशं च वरदं देवैः पूर्वं प्रतिष्ठितम्" (शिवरहस्य 11.49.31)
9. महाभारतोक्त 'शिवसहस्रनाम' में 602वें, लिङ्गपुराणोक्त 'शिवसहस्रनाम' में 31वें तथा 'रुद्रसहस्रनाम' में 591वें नाम के रूप में पठित।
10. "वाराणस्या दशगुणं प्रयागाच्च शतं स्मृतम्। सहस्रगुणितं

अमरावती में स्नान एवं तत्पश्चात् देह पर भस्म लेपन करके नृत्य करते हुए उस रसमय शिवलिंग का दर्शन करने वाला यात्री साक्षात् शिवरूप हो जाता है। उसको 100 गोदान का फल मिलता है।[1] मुमुक्षुओं को अधिक वस्त्र धारण करके उस गुफा में प्रवेश नहीं करना चाहिए। बिना भस्म लेपन किए जो उस हिमलिंग का दर्शन करते हैं, उसको अविधिपूर्वक दर्शन करने के अपराध से नरक जाना पड़ता है। विधिपूर्वक पूर्वोक्त सभी तीर्थों के द्वारा यात्रा न करके जो सीधे अमरेश्वर गुफा में पहुँचने का प्रयास करते हैं, वे कठोरतम इक्कीस नरकों में गिरते हैं। बिना ताण्डव एवं शिवभजन के दर्शन करने वाला तीर्थद्रोही हो जाता है। जो गुफा में दान, पूजा आदि किए बिना लौट आता है, वह कालसूत्र नामक दारुण नरक में गिरता है।

जिन दिनों पूर्वोक्त डामरक महादेवजी को सन्ध्याकाल की सूचना देता था, तब कुछ अन्य शिवगण उसकी नकल उतारते हुए 'कुरु–कुरु' का शोर करके उसका उपहास करते थे। इस पर कुपित हुए शिवजी ने उन गणों को 'कुरु–कुरु' बोलने वाले कबूतर बना दिया। आज भी पवित्र गुफा में दिखने वाले कबूतर वस्तुतः यात्रियों के विघ्नों को हरने वाले शिवगण हैं; जिनको यदि प्रणाम न किया जाए, तो तीर्थद्रोह होता है।[2]

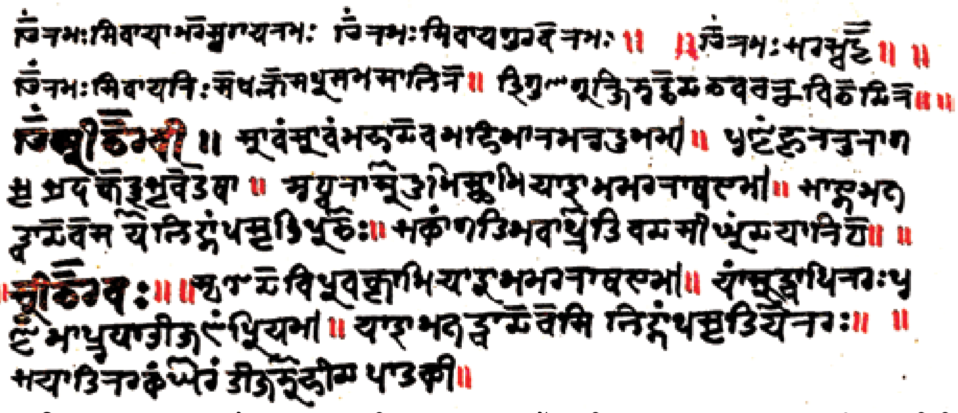
एकादश पटल में भैरवजी कहते हैं : कस्तूरी, कपूर, चन्दन, स्वर्णिम पुष्प आदि से अमरनाथजी की पूजा करने वाला मुक्ति का अधिकारी होता है जबकि धूप, दीप एवं नैवेद्य को अर्पित करने वाला महान् यज्ञ का पुण्यों प्राप्त करता है। तिल के तेल से शिवजी का नीराजन/आरती करने वाला परम पदगामी होता है। घी एवं गुग्गल का धूप देने वाला सदाशिवपद को प्राप्त करता है। पवित्र हिमलिंग की आधी परिक्रमा देने वाला प्रत्येक पद पर हजारों अश्वमेध यज्ञों का फल पाता है। उस क्षेत्र में किए गए पुण्य अक्षय हो जाते हैं। पवित्र हिमलिंग को दण्डवत् प्रणाम करने वाले यात्री को तो स्वयं ब्रह्मा एवं विष्णु भी प्रणाम करते हैं।[3]

पवित्र हिमलिंग के दर्शन करके यात्री लौटकर संगम क्षेत्र (वर्तमान संगम मोड़) पर आए। वहाँ विधिपूर्वक श्राद्ध करने से पितरों को सौ कल्पों तक तृप्ति मिलती है। अन्यत्र खीर, खाँड, घी आदि से बने भोजन द्वारा तपस्वी ब्राह्मणों को तृप्त करने का जो फल है, वह संगम में केवल सत्तू के दान से मिल जाता है। सौ कल्पों तक प्रत्येक मकरस्थ सूर्य होने पर प्रयाग एवं कुरुक्षेत्र में स्नान करने का जो फल है, वह फल संगम में केवल एक बार स्नान करने का है। यही फल अमरावती एवं पंचतरणी में स्नान एवं श्राद्ध का भी है। तदनन्तर भैरवजी ने शिवजी के निमित्त पीठदान का वर्णन किया है; जिसकी समग्र विधि मूलग्रन्थ में द्रष्टव्य है। पूर्वकाल में स्वयं लक्ष्मीजी एवं पार्वतीजी ने भी वहाँ पीठदान किया था।

उक्त विधि से यात्रा को पूर्ण करके यात्रा पुनः मामल ग्राम (वर्तमान गणेशबल) में लौटे तथा गणेशजी को मोदक, गन्ध, दीप, पुष्प आदि की भेंट चढ़ाकर अन्ततः यात्राकाल में प्रयुक्त छड़ी को प्रार्थनापूर्वक नवदल गंगा (वर्तमान त्राल) में समर्पित करे। वहाँ श्राद्ध करना अनिवार्य है। अन्ततः पातालगंगा में स्नान करके वह अपने घर की ओर प्रस्थान करे। अमरनाथ हिमलिंग कलियुग के उग्रतम पापों का नाश करने वाला, जीवों को कर्मबन्धनों से मुक्त करने वाला एवं सभी को परम सुख देने वाला है :

कलिकल्मषघोरनाशनं
रसलिङ्गमुदीरितं प्रिये।
पशुपाशविनाशकारकं ह्यमरेशेति
परं सुखावहम्॥ — अ.मा., 11.17

टिप्पणी : प्रचलित है कि भगवान् शिव ने पहलगाम, चन्दनबाड़ी, शेषनाग एवं पंचतरणी में अपने नन्दी, चन्द्रमा, कण्ठ स्थित नाग एवं गंगधारा को क्रमशः त्यागने के बाद पवित्र गुफा में माता पार्वती के प्रति एक रहस्यमयी अमरकथा कही थी, किन्तु (अमरनाथजी श्राइन बोर्ड की यह स्वीकारोक्ति है कि) यह प्रचलित कथा केवल जनश्रुति पर आधारित है, इसके पक्ष में हमें कोई शास्त्रीय प्रमाण नहीं मिलते।[4] अतः हम श्रद्धालुओं को 'भृंगीशसंहिता' के इसी 'श्रीअमरनाथ–माहात्म्य' का प्रचार करना चाहिए। यही डॉ. कर्ण सिंह जी (सुपुत्र महाराज हरिसिंह जी, जम्मू–कश्मीर रियासत)[5] सहित तत्कालीन अनेक विद्वानों एवं सन्तों द्वारा व्याख्यात एवं उद्धृत भी है। कुछेक लोग अमरनाथ क्षेत्र को 'शक्तिपीठ' भी मानते हैं।[6] उनके अनुसार यहाँ शिव पत्नी सती का कण्ठ गिरा; जिससे यहाँ वे 'महामाया' नामक शक्ति कहलायीं। उन्हीं के भैरव के रूप में अमरेश्वर हिमलिंग 'त्रिसन्ध्येश्वर' कहलाते हैं, किन्तु इस कथन की पुष्टि हेतु सम्प्रति हमें पर्याप्त प्रमाण प्राप्त नहीं हुए हैं। नारायणस्मृतिः॥ •



***चित्र–विवरण :** श्रीरणवीर–केन्द्रीय–संस्कृत–विद्यापीठ (जम्मू) में सुरक्षित 'अमरनाथ–माहात्म्य' की पाण्डुलिपि (24–शैवदर्शन–28, शारदा लिपि)।*

देवि नैमिषात्कुरुजाङ्गलात्॥ त्रैलोक्ये यानि तीर्थानि प्रोक्तानि जगदम्बिके। अमरेशाख्यलिङ्गस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥ अमरेशसमं लिङ्गं दिव्यं भूम्यन्तरिक्षकम्। महापापहरं देवि सद्यः कल्मषनाशनम्" (अ.मा.10.76,84-85)

1. "अमरेशे नरः स्नात्वा गोशतस्य फलं लभेत्" (नीलमतपुराण 1372)
2. "दर्शनीयास्तत्र तत्र कपोता गणसत्तमाः। महापापहराः प्रोक्ता यात्रिभिः पारमार्थिकैः" (अ.मा.10.73)
3. "यो दण्डवच्च प्रणमेद्भूमौ देव्यमरेश्वरम्। तं ब्रह्मा च हरिश्चापि नमतो हीति संस्थितिः" (वही 11.26)
4. देखें RTI-प्रत्युत्तर-पत्र-संख्या : SASB/2023/373-D/RTI/250। वस्तुतः ऐसी अनेक भ्रान्तियाँ कालक्रम से आ चुकी हैं; जिनका संज्ञान लेना आवश्यक है। ऐसी ही एक अन्य भ्रान्ति भी है कि "पवित्र गुफा की खोज किसी मुस्लिम गडरिए द्वारा लगभग 1850 ई. में हुई।" यह भी निराधार बात है; क्योंकि एड्वर्ड थ्रोंटन ने अपने 'A Gazetteer of the Territories Under the Government of the East India Company' (1858; पृ.33-34) में 'अमरनाथ/Amurnath' का नामोल्लेख करके मूरक्राफ़्ट के 1825 ई. में पवित्र गुफा पर पहुँचने का वर्णन किया है। उससे पहले औरंगज़ेब के निजी चिकित्सक फ्रांसिस बर्नियर ने 'Travels in the Mogul Empire, AD 1656–1668' (पृ.418) में अपने पवित्र गुफा तक पहुँचने का वर्णन किया है। उससे पूर्ववर्ती इतिहास 'राजतरंगिणी' में संगृहीत है [कल्हण = 1.267, 7.183+185, 8.506+590+729+756+1124; जोनराज = 2.1233-1234]। इस प्रकार; श्रीअमरनाथजी की यात्रा-परम्परा अत्यन्त समृद्ध ज्ञात होती है। 'महाभारत' में नकुल की दिग्विजय-यात्रा में किसी 'अमरपर्वत' का उल्लेख है : "तथैवामरपर्वतम्" (2.32.11 गीताप्रेस)। विद्वानों ने उसके 'अमरनाथ' होने की सम्भावना कही है। जैसे 'महाभारत' में अन्यत्र हमें 'वैष्णोदेवी' का भी संकेत मिलता है : "जम्बूकटकचैत्येषु नित्यं सन्निहितालये" (6.23.10)।
5. "THE GLORY OF AMARNATH", Dr. Karan Singh, 'Vedanta' (English magazine), November-December 1956, Ramakrishna Vedanta Centre (UK)
6. कल्याण 'तीर्थांक' (पृ.82), गीताप्रेस-गोरखपुर